International Journal of Information Movement Vol.5 Issue IX (January 2021)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 18-29

चन्द्रकांत देवताले के साहित्य में वैष्विक परिदृष्य

डॉ. ऋतु
एसोसिएट प्रोफेसर
डी.ए.वी.(पी.जी) कॉलेज,
करनाल, हरियाणा
Email: kaliaritu1975@gmail.com

भूमिका

कवि चन्द्रकांत देवताले अपने समय के सजग कवि हैं। इन्होंने भारतीय समाज के सामान्य, पिछड़े और प्रताड़ित लोगों की समस्याओं तथा उनके शोषण का खुलकर विरोध किया है। परन्तु जीवन में वैश्विक समस्याएँ भी उनकी कविता में सहज रूप से उकेरी गई हैं। मानव मूल्यों का ह्रास, आतंकवाद की समस्या, भूमण्डलीकरण, बाज़ारीकरण आदि समस्याओं पर कवि ने विचार किया है। जो आज वैश्विक समस्याएँ बनी हुई हैं। प्रदूषण के कारण मानव बीमारियों का सामना करता है। सुबह से शाम तक हत्या और मौत की खबरें अखबारों के पन्नों पर छपी रहती हैं। सुंदर–सुंदर बगीचे उजाड़ दिए। धीरे–धीरे जमीन पर भी सीमेंट की बड़ी–बड़ी ईमारतें खड़ी हो गई हैं। प्रदूषण की समस्या, आतंकवाद, विश्वशांति–विश्वमानता की तलाश, प्रकृति संरक्षण का संकेत, बाज़ारवाद का प्रभाव आदि बिन्दुओं का व्यापकता से वर्णन किया जाएगा।

मुख्य शब्द : तलाष, भूमण्डलीकरण, प्रताड़ित, विष्वषांति–विष्वमानता, आतंकवाद, उकेरी

1.0 वैष्विकता का अर्थ एवं स्वरूप

'वैश्विक' शब्द 'विश्व' शब्द से बना है। 'विश्व' शब्द के शब्दकोश में लगभग 8 अर्थ दिए हैं, जिनमें पहला है 'समस्त ब्रह्मांड'[1] और दूसरा हैμ'संसार, जगत् या दुनिया'।[2] हमारा सम्बन्ध दूसरे अर्थ से है। अब 'वैश्विक' का अर्थ होता है 'संसार, जगत् या दुनिया से सम्बन्धित' अर्थात् चन्द्रकांत देवताले जी की कविताओं में सम्पूर्ण दुनिया का संसार पर एक साथ प्रभाव डालने वाली कौन सी घटनाओं का चित्रण हुआ है इसका विवेचन किया है।

बीते दस–पंद्रह वर्षों में वैश्विकरण तेज गति से हुआ है। वैसे यह प्रक्रिया कुछ सदियों पूर्व ही आरंभ हुई थी। चीजें, सेवाएँ, सेना, धर्म, संस्कृति आदि एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में जाने की प्रक्रिया तो दो हजार साल पहले से ही आरम्भ हुई है। तकनीकी ज्ञान में हुए अभूतपूर्व परिवर्तन के कारण यह लेन–देन तेज गति से और बड़ी मात्रा में हो रहा है। वैश्विकरण की इस प्रक्रिया ने जीवन के हर क्षेत्रा को छुआ है उसने मानव को अपने बाहुओं में बद्ध किया है।

नए विश्व की अर्थव्यवस्था अभूतपूर्व नया मोड़ ले रही है। बीती शताब्दी तक हमारा देश और लगभग सम्पूर्ण विश्व कृषि प्रधान था। अधिकतर लोग कृषि–उपज में अटके हुए थे। फिर भी उपज बहुत कम थी। अब कृषि–उपज बढ़ रही है। फसलों में भी विभिन्नता बढ़ रही है। लेकिन इस व्यवसाय में काम करने वाले लोगों की संख्या कम हुई है। अमेरिका और यूरोप में आज दो–तीन प्रतिशत लोग ही खेती में काम करते हैं। धीरे–धीरे कृषि प्रधान भारत में भी खेती में काम करने वाले लोगों की संख्या कम होती जा रही है। कदाचित भारत में भी अमेरिका–यूरोप जैसी स्थिति कुछ वर्षों बाद हो सकती है। जैव तकनीकी, सूक्ष्म तकनीकी तथा यंत्रज्ञान का प्रयोग करके प्रति एकड़ कृषि उपज में अपार वृद्धि हुई है, और होने वाली है। यातायात की तेज सुविधा और संचार माध्यमों की अभूतपूर्व क्रांति के कारण दुनिया के किसी भी कोने में तैयार होने वाली कृषि उपज दुनियाभर में पहुँच रही है। फल और सब्जियाँ भी उसमें शामिल हैं।

कपड़े तथा अन्य आवश्यक चीजें हाथ से तथा गाँव में ही बनाने वाला मानव औद्योगिक क्रांति के कारण दुनिया से नाता जोड़ चुका है। यंत्रों का उपयोग करने से चीजें कम समय और कम श्रम में बहुत बड़ी मात्रा में निर्माण होती हैं तथा उनका दर्जा भी अच्छा होता है। इसका पता चलते ही मानव उसका ज्ञान हासिल करने तथा अपने यहाँ लाने एक देश से दूसरे देश जाता रहा। पिछले कुछ वर्षों में तो हर क्षेत्र में स्वयंचलित यंत्रा आ चुके हैं। इन यंत्रों पर काम करने के लिए तथा नए आधुनिक यंत्रों का निर्माण करने के लिए शिक्षा की भी आवश्यकता महसूस हुई। विश्वस्तर पर जैसे–जैसे शिक्षा का विस्तार होता गया, लोगों का वैश्विक ज्ञान बढ़ता गया।

पिछले 10–15 वर्षों से तो इंटरनेट, मोबाईल, ई–मेल, दूरदर्शन जैसे संचार माध्यमों में हुई क्रांति के कारण दुनिया ने 'ग्लोबल व्हिलेज' (वैश्विक गाँव) का रूप धारण किया है। पिछले कुछ वर्षों में 'वैश्विक वाणिज्य संघ' (डब्ल्यूटीओ) द्वारा तैयार किया हुआ 'सेवा क्षेत्रों के वाणिज्य' का सर्वव्यापी 'गेंटस्' (जनरल अग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्व्हिसेस) करार भी राष्ट्रों की सीमाएँ मिटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। पिछले कुछ दशकों में वैश्विकरण से विश्वमानवता का बोध, ज्ञान का विस्तार, विज्ञाननिष्ठ और विवेकानिष्ठ समाज निर्मिति, धर्म और सम्प्रदाय का घटता प्रभाव तथा विश्व के किसी भी कोने में उत्पादित वस्तुओं का दुनिया भर में सहज और सस्ते में उपलब्ध होना जैसे लाभ मानव को जरूर हुए हैं। लेकिन इसके साथ ही

प्रदूषण, आतंकवाद, प्रकृति की हानि तथा बाजारवाद के प्रभाव से उत्पन्न सेक्स और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति में वृद्धि जैसी वैश्विक समस्याएँ भी उग्र बनती जा रही हैं।

2.0 देवेवताले की कविता औरैर वैष्विक–संदर्भ

चन्द्रकांत देवताले अपने समय के सजग कवि हैं। उन्होंने जरूर भारतीय समाज के सामान्य, पिछड़े और प्रताड़ित लोगों की समस्याओं तथा उनका शोषण करने वाले शोषकों के घिनौने हथकंडों का चित्रण अपने काव्य में किया है। लेकिन इन लोगों के जीवन पर प्रभाव करने वाली वैश्विक समस्याएँ भी उनकी कविता में सहज ही चित्रित हुई है। युगीन प्रदूषण, आतंकवाद, मानवीय मूल्यों का ह्रास, प्रकृति का विध्वंश, प्राकृतिक आपदा से त्रास्त मानव, बाज़ारवाद का बुरा असर तथा विश्वशांति और विश्वमानवता की स्थापना में आने वाले अडसर जैसी समस्याओं पर उनके काव्य में विचार हुआ है, जो आज वैश्विक समस्याएँ हैं।

2.1 प्रदूषण की समस्या

औद्योगिक प्रगति तथा नए–नए वैज्ञानिक आविष्कारों से दुनियाभर के मानव का जीवन सुखकर हुआ है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी अन्वेषण से यातायात सहज और गतिमान हुई है, हवा और पानी से भी यात्रा सहज संभव हुई है। मानव की क्षमता के परे होने वाले अनेक कठिन और असंभव कार्य यंत्रों से सहज संभव हुए हैं। अंतरिक्ष तथा समुंदर की अतल गहराइयों में छिपे अज्ञात तथ्यों की खोज भी मानव के लिए सहज संभव हुई है। संकर–बीज निर्मिति से अनाज तथा फलों के उत्पादन में जबरदस्त क्रांति हुई है, कीट नाशक औषधों से किसान निर्श्चित हुए हैं। मानव की अनेक बीमारियों पर दवाइयाँ उपलब्ध हैं, बीमारी न हो इसलिए बीमारी–रोधक टीके
लगाए जा रहे हैं। लेकिन औद्योगिक प्रगति के इतने सारे फायदों के बावजूद भी कारखानों से निकलने वाला धुँआ, कैमिकल तथा अन्य फैक्टरियों से नदी तथा सागर में छोड़ा जाने वाला गंदा पानी, ग्रीन हाऊस गैस, फैसलों के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले कीटनाशक (जहर), यांत्रिक वाहनों में प्रयुक्त किया जाने वाला मिट्टी का तेल तथा कारखानों में निर्मित 'धनकचरा' प्रदूषण की भयंकर समस्या निर्माण कर चुका है। देवताले जी ने इन समस्याओं से जुझते हुए मजदूरों का चित्राण इस तरह किया हैµ

"आज भी चिमनियों से
पंख फैलाकर उड़ता है धुंए का पहाड़
त्रिभुवन नहीं था वहाँ
उस आदिम सबेरे में
पर देखता है शाम को यहाँ
मशीनों को अपना खून दे
लौटते हुए पीले–जर्द–लस्त चेहरे
जो एक अँधेरे से जा रहे हैं
दूसरे अपने अँधेरे में
जबकि नियॉन लाइट की भभकों में
लगातार चमकती और बुझती है समृद्धि और सभ्यता।"[3]

औद्योगीकरण तथा यातायात के लिए प्रयुक्त यांत्रिक वाहनों के कारण प्रदूषण हो रहा है। जो स्थान एक समय हवा और पानी के प्रदूषण से मुक्त स्वर्ग के समान लगता था, जहाँ की हवा में बिल्कुल धूल नहीं होती थीं तथा पानी अमृतसम था, आज वहाँ की दुकानें धूल से भरी हैं तथा पानी जहर बना हुआ है। इस प्रदूषण से मानव श्वसन संस्था तथा पेट की विभिन्न बीमारियों का शिकार हो जाता है। मछलियाँ भी इस पानी में जीवित नहीं रह सकतीं, फिर भी मानव को यही पानी पीना पड़ता है। खासकर औद्योगिक कारखानों का गंदा पानी जिस नदी में छोड़ा जाता है, उस नदी
के किनारे बसे हुए गाँवों में रहने वाले लोगों को इस समस्या का अधिक सामना करना पड़ता है। कवि गोंडों की बस्ती की इसी समस्या पर प्रकाश डालते हैं

"यहाँ है धूल–धस्सर में धँसी दुकानें तिवडे की
गादियों पर लेटे अजगर
दूर महादेव की चोटी को देखते गाड़ीवान
जिनकी जुबानों को ऐंठाती हवा की खुश्की
प्रदूषण जल का पेट बजाता।"[4]

प्राकृतिक शुद्ध पानी तथा हवा को तो हमने औद्योगिक कारखानों और नगरों से छोड़े जाने वाले गंदे पानी से खराब कर ही लिया है। लेकिन जो भोजन मानव अपने हाथ से बनाता है, वह भी आज दूषित हुआ है। आज मानव, किसी भी मार्ग का अवलंब करके अधिक से अधिक धन कमाना चाहता है। परिणामतः दूध तथा अन्य खाद्य पदार्थों में मिलावट की जाती है।

ये मिलावटी चीजें भोजन में इस्तेमाल करने से भोजन जहर बन जाता है। देवताले हमारे ही देश के भोजन, पानी और हवा की शुद्धता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं और व्यंग्यात्मक ढंग से यह समस्या कविता के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं–µ

"भोजन, पानी और हवा की अधिकता
या शुद्धता से होने वाली सम्मानजनक मौतें
सहायक होंगी राष्ट्रीय समृद्धि के आँकड़ों में
कर्त्तव्य है नागरिकों का कि तुरंत सूचना दें
ऐसे कीर्तिमानों की
मृत्यु–मुआवजा आयोग के उप सचिव क्रमांक एक को
कूट–परीक्षण चाहता है आयोग
मृत्यु की हर स्थिति और संभावना का
किंतु खड़ी हो जाती हैं उलझनें अक्सर
आपस में चर्चा किए बगैर मरने से अकस्मात।"[5]

समाज और अनेक परम्पराएँ और रूढ़ियाँ भी प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं। विशेषकर भारत में यह समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। गंगा जैसी सबसे पवित्र मानी जाने वाली नदी में तो पूरे भारतवर्ष से आकर लोग अपने प्रियजनों का भस्म विसर्जन करते हैं तथा पाप धोने के लिए उसी में डुबकियाँ लगाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व सरकार ने इस पर पाबंदी लगाई थी, लेकिन आज भी यह सब चल रहा है। कारखानों तथा नगरों से छोड़े जाने वाले गंदे पानी से पहले ही नदियों का पानी प्रदूषित हुआ है। ऊपर से इन धार्मिक तथा अन्य क्रिया–कर्म के नाम पर नदी के जल में जो कूड़ा फेंका जाता है, उससे नदी कीचड़ का रूप धारण कर चुकी है। विश्व के अनेक देश इस समस्या से जूझ रहे हैं। इस समस्या पर कवि ने इस प्रकार प्रकाश डाला है–µ

"मरे हुए के बारे में
लोग बेशर्म होकर भाषण देते हैं
और मैं पत्थर पर गुमसुम बैठे–बैठे
कीचड़ हो चुकी पवित्रा नदी को देखता रहता हूँ
ऐसे वक्त भी अपना जिंदा होना याद आता है
पर यह किस काम का।"[6]

दुनियाभर के सभी देश जल–प्रदूषण की समस्या से त्रास्त हैं। जबकि नगरों तथा कारखानों से छोड़े जाने वाले गंदी पानी को शुद्ध करने के अनेक उपाय भी विज्ञान ने ढूँढ़ निकाले हैं। जिन राष्ट्रों के लोग और सरकार इस समस्या के प्रति सजग हुए हैं, उन्होंने इस समस्या से छुटकारा पाया है। लेकिन भारत जैसे विकसनशील देशों में लोगों की सहिष्णुता तथा अज्ञान का और सरकार की अनास्था का फायदा उठाकर बड़े–बड़े उद्योगपति अपने कारखानों का गंदा पानी प्रक्रिया किए बिना नदी में छोड़ देते हैं। अपने खिलाफ कोई शिकायत न हो इसलिए ये लोग आसपास के सामाजिक संगठनों, देवालयों तथा धार्मिक कार्यों के लिए चंदा देकर दानवीर कहलाते हैं। क्योंकि उनके कारखानों से होने वाला प्रदूषण रोकने के लिए उससे कई गुणा अधिक खर्चा आता है। कवि इन दानवीरों की पोल खोलते हुए लिखते हैंµ

"नदियों को गटर बनाने वाले
दानवीर कहलाए चंदा देकर
भूसा भरा स्वाद के भीतर
पेड़ों की गरदन काटी जिनने
वे ही बने मुख्य अतिथि अपने।"[7]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रदूषण एक वैश्विक समस्या है जो मानव की विभिन्न बीमारियों की जड़ बनी हुई है। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण इस समस्या को विकराल बना रहे हैं। प्रकृति की जीवसृष्टि का संरक्षण कवच माने जाने वाले 'ओझोन' वायु को भी इस प्रदूषण से हानि पहुँची है। उसमें एक विवर निर्माण हुआ है और वह बढ़ता ही जा रहा है। समय रहते मानव इस समस्या को दूर करने का प्रयास करेगा, तो प्रकृति और जीवसृष्टि का बचना संभव है, अन्यथा विनाश अटल है।

2.2 आतंकंकवाद या दहशतवाद

'आतंक' शब्द का अर्थ हैµ'रोब, दबदबा, भय, शंका'1। अर्थात् अपने भयंकर तथा दानवी कृत्य से समाज में भय निर्माण करना ही आतंकवाद है। 'दहशत' शब्द का अर्थ हैµ'डर, भय, खौफ'[2]। आतंकवाद और दहशतवाद एक–दूसरे के समानार्थी शब्द हैं, लेकिन हिन्दी में 'आतंकवाद' ही प्रचलित शब्द है, जबकि मराठी में
'दहशतवाद' अधिक प्रचलित है।

International Journal of Information Movement Vol.5 Issue IX (January 2021)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 18-29

आतंकवाद के अनेक प्रकार हैं। धर्म, नस्ल, राजनीति तथा जाति के आधार पर आतंकवाद के अलग–अलग पहलू दिखाई देते हैं। इनमें से एकाध प्रकार का दहशतवाद हर राष्ट्र में थोड़ी–बहुत मात्राा में दिखाई देता था। लेकिन पिछले तीन–चार दशकों से आतंकवाद एक वैश्विक समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। हाल ही में ब्रिटेन और फ्रांस में हुए आतंकवादी हमले इसी के प्रतीक हैं। देवताले सजग कवि होने के कारण वैश्विक समाज के हर व्यक्ति को खौफ दिखाने वाली इस समस्या का अंकन अपने काव्य में कर चुके हैं। इसी आतंक के कारण उन्हें अपना समय हर दिशा में डरावना लगता है–µ

"माँ ने एक बार मुझसे कहा थाµ
दक्षिण की तरफ पैर करके मत सोना
वह मृत्यु की दिशा है
और यमराज को क्रूद्ध करना
बुद्धिमानी की बात नहीं
x x x
पर आज जिधर भी पैर करके सोओ
वही दक्षिण दिशा हो जाती है
सभी दिशाओं में यमराज के आलीशान महल हैं
और वे सभी में एक साथ
अपनी दहकती आँखों सहित विराजते हैं।"[8]

सुबह से शाम तक हत्या और मौत की खबरें पढ़–पढ़ कर कवि सुन्न हो जाते हैं। वे देखते हैं कि दहशत पक्षियों के पंखों, बच्चों की आँखों, माताओं के दूध और समय की हड्डियों में व्याप्त है। इस हिंसक दहशतभरे समय में जीकर और उसकी खूँखारता का अनुभव करके कवि अपने समय को ही 'हिंसक' घोषित करते हैं। समसामयिक समय की खूँखारता और आतंक का चित्रण करने वाली उनकी कविता 'हिंसक समय में' यहाँ सम्पूर्ण उद्धृत करना ही उचित होगा–µ

"मैं जी रहा हूँ मौत की खबरों के भीतर
चल रहा हूँ हत्यारे हिंसक समय में
फिर मरने का अफसोस क्यों होगा मुझे
मुझे याद है दिया–बत्ती के वक्त
माँ के साथ प्रार्थना के लिए खड़ा हो जाता था
अब उसी वक्त घरों में भून दिया जाता है
औरतों और बच्चों को
दहशत पक्षियों के पंखों पर
बच्चों की आँखों
माँओं के दूध तक में दहशत
समय की हड्डियों में
दिन डूबने की सुबह होने की
खुशियों का खून जम गया है
और इसे भी पूजा कहा जा रहा है
यह युद्ध से भी बदतर युद्ध है
और करोड़ों आँखें इस सबको
सिर्फ खबरों की तरह पढ़ने को अशिशप्त हैं।"[9]

वर्तमान खौफनाक दहशतवाद से कवि इतने आतंकित हैं कि थकान, विश्राम और प्रेम का सहारा बनने वाले बगीचे में रखी गई 'पत्थर की बैंच' भी उसकी चपेट में आने की आशंका व्यक्त करते हैं–µ

"पत्थर की बैंच
जिस पर अंकित हैं आँसू, थकान
विश्राम और प्रेम की स्मृतियाँ
इस पत्थर की बैंच के लिए भी
शुरू हो सकता है किसी दिन
हत्याओं का सिलसिला
इसे उखाड़ कर ले जाया
अथवा तोड़ा भी जा सकता है।"[10]

दहशत आम व्यक्ति को बेचैन बनाती है, मानो वह मौत के नजदीक सटकर सोया हुआ हो। यह कब उस पर हमला करेगी पता नहीं चलता और हमले की कोई खास वजह भी नहीं होती। अतः वर्तमान समय में विश्व का हर व्यक्ति उसकी हिंसक

छाया में जी रहा है इसका चित्राण देखिए–µ

"मगर जो चीज गायब थी
वह गर
दहशत होती
तो मैं सुखी होने के
ढोंग में चलने लगता
पर.....
वह उजागर थी
क्योंकि इल्म नहीं था
और आँखें दुरूस्त थी
ख्याल में
मौत के नजदीक सटकर
बैठी हुई समझदारी थी
मैं कसकर
अपने को
सँभाल रहा था
पर बिखरी हुई किताबें
और कागज के टुकड़े
मुझे बता रहे थे।"[11]

दहशत फैलाने वाले हत्यारें, मानव के सुहावने सपनों, बच्चों तथा फसलों को चींथते चले जाते हैं। उनके लिए तोप और चंद्रमा में कोई बुनियादी अंतर नहीं होता। शांत, सभ्य और मासूम लोगों के जीवन में यह जहर घोलने का काम करते हैं। ये लोग दुनिया में हर अक्षांश पर फैले हुए हैं। इनके दानवीय तथा वहशी चरित्र का पर्दाफाश करते हुए कवि ने लिखा है–µ

"जन्म और धर्म और रंग की
अदृश्य अभिशप्त छायाओं के बीच
हर सुबह एक जन्मोत्सव
हर दोपहर अनगिनत छोटे–छोटे महाभारत
हर अक्षांश और देशांश पर
पंखों की परछाई पर नाखूनों की भाषा
हर शाम सितार की महफिल
और उसी वक्त हत्यारों की गुप्त मंत्रानाएँ
हर रात बच्चों की नींद के बारे में
सोचते माँ–बाप हँसते बच्चे नींद में
सितारों को देख देह की कविता पढ़ते स्त्री–पुरुष
और उसी वक्त सुलगती झोपड़ियाँ
धरती के बिखरे केशों को जलाता अग्निकांड
और पशुओं की तरह
स्त्रिायों–बच्चों–सपनों और फसलों को चींथते
किटकिटाते दाँत
नींद के इस छोर पर
वायलिन बजाती हुई बच्ची हैं
और दूसरे छोर को कुतरते भय के पहाड़ी चूहे हैं
चंद्रमा और तोप में कोई बुनियादी अंतर है
इसे तेंदुए के दाँत नहीं जानते
नहीं जानते हत्यारे मस्तिष्क भी
कि हँसी दाँत से पकड़ने की चीज नहीं है।"[12]

दुनिया के हँसी–खुशी भरे सुंदर बगीचों को उजाड़ने वाले आतंकवादियों के कारनामे दिन के उजाले और रात के अंधेरे में भी चलते ही रहते हैं। कभी इनके काले कारनामे छपकर आते हैं, तो कभी बिन छपे ही रहते हैं। लेकिन इन वहशी दरिंदों का कोई कुछ नहीं बिगाड़ पाता –

"शब्द कागज की तरह फाड़कर बेमुरव्वत
चींथ देते हैं घटनाओं को सुबह–शाम
और कुछ नहीं होता
बहुत कुछ होता है रोज छपे–बिन–छपे
पर उन काली परछाइयों का कुछ नहीं बिगड़ता
जो दुनिया का सबसे सुंदर बाग
इस तरह उजाड़ती हैं।"[13]

पिछले आठ–दस वर्षों से तो आतंकवादी करवाइयाँ इतनी बढ़ी हैं कि पुलिस द्वारा बार–बार यह चेतावनी दी जा रही है कि 'किसी भी अज्ञात व्यक्ति और वस्तु से सावधान रहना है'। कवि अपने समय की इस यातना भरी एवं शर्मनाक पहचान का जिक्र करते हुए उसे व्यंग्यात्मक लहजे में पेश करते हैं–µ

"और मुझे यह मुनासिब नहीं लगा
कि मैं सर्वज्ञात–सम्मानित हत्यारों के बारे में
कोई टिप्पणी करूँ
यह भी कौंधा मेरे मस्तिष्क में
मैं भी तो रहता हूँ सावधान अज्ञात व्यक्तियों से
हमारे समय का शायद यही होगा समाधि–वाक्य
हर कोई रहता था एक–दूसरे से सावधान
यहाँ तक कि प्रेम में भी बरती जाती थी
भरपूर सावधानी।"[14]

माफिया गिरोह के लोग, खास तौर पर उनके सरदार इतने चालाक होते हैं कि अपने सिपाहियों को अनेक नई–नई चालें सिखाते हैं। मीठी और स्नेहभरी बातें करके लोगों को अपने जाल में फँसाने और फिर उनकी सामूहिक हत्या करने की घिनौनी कला की शिक्षा किस प्रकार दी जाती है, इसका जिक्र करते हुए कवि ने माफिया सरगने के पाशवी और दगाबाज चरित्र का भंडाफोड़ किया है–µ

"आक्रामक जुमलों से हुए खामियाजे से
सबक लेना होगा
भाषा के प्रति रवैया बदलना है
फूल को पवन झकोरे–महक
बच्चों को गुब्बारे–पतंग
और औरतों को सुहाग–ममता जैसे मुहावरों से
जहर देने की महारत हासिल किए बिना
हम वहाँ तक नहीं पहुँच सकते
शब्द स्वतः चलित मशीनगनों से निकले जरूर
पर लगे देववाणी
बरसें पूजा के फूलों की तरह
और देखते–के–देखते कर दें ठार सैंकड़ों को
स्थाई विध्वंस के लिए भाषा के ऐसे प्रयोग में
थोड़ी प्रार्थना और थोड़ा संगीत
शामिल करने का सुझाव दिया है
सरदार गोपनीय क्रमांक एक ने।"[15]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आतंकवाद जैसी वैश्विक समस्या से देवताले बखूबी परिचित हैं। उन्होंने बताया है कि आतंकवाद ने आज हर राष्ट्र, हर गाँव और हर घर तक अपना खौफ फैलाया है। शांत और सरल जीवन जीने की इच्छा रखने वाला दुनिया का हर व्यक्ति आज उसकी दहशत में जी रहा है। उसे उखाड़ फेंकना किसी व्यक्ति या राष्ट्र के भी बस में नहीं है।

3.0 विश्वशांति तथा विश्वमानवता की तलाश

देवताले ने अपने काव्य में भारतीय आम लोगों तथा स्त्रियों के दुख–दर्द और शोषण को वाणी दी है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे समसामयिक काव्य प्रवृत्तियों से अछूते रहे हैं। साठोत्तर कविता राष्ट्रीय परिधि से बाहर जाकर

मानव की अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करने लगी हैं। साठोत्तर काव्य की यह प्रवृत्ति कुछ मात्रा में देवताले के काव्य में भी देखी जा सकती है। भारतीय प्राचीनकाल से ही शांतिदूत माने जाते हैं। यहाँ शांति और सद्भावना को अधिक मूल्य दिया जाता है। सहयोग करना और सहयोग की अपेक्षा करना और सहअस्तित्व में विश्वास रखना ही भारतीय चरित्रा है। लेकिन सब भारतीय देखते हैं कि विश्व में सहअस्तित्व, सद्भावना, मैत्री और सहयोग का वातावरण समाप्त होता जा रहा है, तो वे सब को संयत कर देना चाहते हैं। अपने पुरखों तथा सहयोगियों की इसी इच्छा तथा सपने को कवि साकार करने की इच्छा रखते हैं। सम्पूर्ण विश्व को प्रेम के एक ही धागे में बांधने की उनकी इच्छा है, इसे व्यक्त करते हुए लिखा है–µ

"जब हम प्रेम करते हैं, पृथ्वी से
आँखों में तैरते हैं सातों समुद्र
और पुरखों के सपनों की पताकाएँ
फहराने लगती हैं समय के आकाश में
पानी का दरख्त नदी में
और नदी समुद्र में मिल जाती है
फिर भी पूरी नहीं होती प्रेम की परिक्रमा
क्षितिजों के पार कुछ ढूँढती ही रहती हैं
कवियों की आँखें।"[16]

विश्वमानवता का संदेश देते हुए कवि कहते हैं कि अगर हम अपने संकुचित दायरे से बाहर निकलकर विश्व के हर व्यक्ति को अपना भाई मानते हैं, उसके साथ सद्भावनापूर्ण और स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, तो दुश्मन भी मित्र दिखाई देता है तथा दुश्मनी हमेशा के लिए मिट जाती है। लेकिन इसके लिए कवि सेवा और त्याग की आवश्यकता इस तरह बताते हैं–µ

"अगर तुम्हें नींद नहीं आ रही
तो मत करो कुछ ऐसा
कि जो किसी तरह सोए हैं उनकी नींद हराम हो जाए
हो सके तो बनो पहरूए
दुःस्वप्नों से बचाने के लिए उन्हें
गाओ कुछ शांत मद्धिम
नींद और पके उनकी जिससे
सोए हुए बच्चे तो नन्हें फरिश्ते ही होते हैं
और सोई स्त्रियों के चेहरों पर
हम देख ही सकते हैं थके संगीत का विश्राम
और थोड़ा अधिक आदमी होकर देखेंगे तो
नहीं दिखेगा सोए दुश्मन के चेहरे पर भी
दुश्मनी का कोई निशान।"[17]

आधुनिक वैज्ञानिक युग में केवल राष्ट्रीय घटनाएँ ही व्यक्ति के मनोजगत को प्रमाणित नहीं करती अपितु अंतर्राष्ट्रीय घटनाएँ भी आज व्यक्ति जीवन को आंदोलित कर देती हैं। समय और स्थान की दूरी कम होने से, प्रेस की सुविधा से विश्व सिमट कर बहुत छोटा हो गया है और एक–दूसरे के सुख–दुख अब व्यापक स्तर पर प्रभाव डालते हैं। शीतयुद्ध के दरमियान रूस और अमेरिका जैसी महाशक्तियाँ तो मसखरी कर रही थीं, लेकिन उनके इस खेल में वियतनाम जैसे देशों को हानि उठानी पड़ी थी। कवि इसे विश्वशांति में अग्रसर बताते हुए लिखते हैं–µ

"देश के लिए जरूरी है स्वास्थ
और स्वास्थ के लिए मसखरी
मसखरी कर रहा है रूस और अमरीका
और गंभीर होकर
नंगा हो रहा है आदमी
वियतनाम के भीतर।"[18]

जब तक रूस और अमेरिका ये महासत्ताएँ विश्व में अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए जूझ रही थीं, तब तक दुनियाभर के देश तीसरे महायुद्ध की आशंका से डरे हुए थे। लेकिन सन् 1989 में सोवियत साम्यवाद का पतन हुआ और अमेरिका एक वैश्विक महासत्ता के रूप में उभरा। अमेरिका के नेतृत्व में एक ध्रुवीय विश्वव्यवस्था कायम हुई है। अब अमेरिका वैश्विक पुलिस की भूमिका निभा रहा है और उसे रोकने की हिम्मत आज तो किसी में भी नहीं है। कवि अमेरिका का इस तरह रणबाँकुर बनना विश्वशांति के मार्ग में अग्रसर समझते हैं–µ

".....डर रहा हूँ उन रणबाँकुरों से
जिनकी नाक के नीचे
स्वर्ग महकता रहता है हमेशा

और जो इस वहम में खुश थे और हैं
कि आकाश–पाताल मिलाते हुए
वे ही घुमा रहे हैं समय के पहिए।"[19]

इस प्रकार स्पष्ट है कि देवताले की कविता में वैश्विक बोध है। विश्वशांति के लिए सम्पूर्ण विश्व को वे प्रेम के एक ही धागे में बाँधने की सुंदर कल्पना व्यक्त करते हैं, जो हमारे पुरखों की अधूरी इच्छा है। अर्थात् उनकी कविता भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों को पुनः तलाशने और स्थापित करने का प्रयास करती है। हालांकि हम भारतीय संस्कृति के आधारभूत मूल्यों–जन कल्याण, समानता, विश्वमैत्री, विश्वशांति और विश्वबंधुता को अभी स्थापित नहीं कर पाए हैं।

4.0 प्रकृति–संरक्षण का संकेत

औद्योगीकरण, विकास और खेती के नाम पर आधुनिक काल के आरंभ से ही मानव ने प्रकृति का अपरिमित नुकसान किया है और अब भी जारी है। प्रकृति की हानि होने से धरती का तापमान और प्रदूषण बढ़ा है तथा पृथ्वी का संरक्षक माना जाने वाला ओझोन वायु का परदा पतला हुआ है, उसमें छेद बना है आदि जानकारी जब से वैज्ञानिकों ने दी है, तब से पर्यावरण के प्रति मानव कुछ मात्राा में सजग हुआ है। लेकिन स्वार्थवश आज भी प्रकृति की हानि जारी है, जब कि वैज्ञानिकों ने 1970 के पहले ही इस खतरे की सूचना दी है। 'पर्यावरणवाद जो पश्चिमी देशों में 1970 से शुरू होने वाले दशक में उभरकर सामने आया है और धीरे–धीरे पूरे विश्व में फैल गया। वातावरण के विज्ञान से गहरे सरोकार के कारण पर्यावरणवादियों को परिस्थिति विज्ञानी भी कहा जाता है। चूँकि इस आंदोलन के अन्तर्गत वातावरण में हरियाली कायम रखने पर जोर दिया जाता है, इसलिए इसे हरित राजनीति की संज्ञा से भी अभिहित किया गया है। इसके समर्थकों का अभिमत है कि धरती किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। यह हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में नहीं मिली बल्कि यह हमारे पास भावी पीढ़ी की धरोहर है। अतः हम वर्तमान प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखने के दायित्व से बँधे हैं। पर्यावरणवाद जीवन की गुणवत्ता को आर्थिक संवृद्धि से ऊँचा स्थान देता है तथा प्राकृतिक संसाधनों, प्राकृतिक सौंदर्य, वातावरण की स्वच्छता तथा नगरों एवं उपनगरों के स्वरूप को कायम रखने पर बल देता है। इसके लिए वह उन्नत देशों के लोगों को अपने उपभोग के प्रतिमानों एवं जीवन–शैली में बदलाव लाने की हिदायत भी देता है। पर्यावरणवादी चाहते हैं कि मनुष्य प्रकृति के साथ संतुलन की अवस्था में रहे, उसे नष्ट न करें।"[20]

देवताले गाँव के प्रति आसक्ति रखने वाले तथा वहाँ की हरी–भरी प्रकृति में रममाण होने वाले बेहद संवेदनशील मनुष्य हैं। अतः औद्योगीकरण के नाम पर अपने आस–पास की प्रकृति को उजड़ते हुए देखकर वे कैसे चुप रह सकते हैं। हरी–भरी और सघन झाड़ियों वाली प्रकृति की गोद में बसी नागझिरी में एशिया का सबसे बड़ा सोयाबीन का कारखाना खड़ा होना तय हो जाता है, तो वहाँ की प्रकृति उजाड़ दी जाती है। औद्योगीकरण के नाम पर किया गया प्रकृति का विनाश देखकर कवि चिंतित है, अपनी चिंता को उन्होंने इस तरह प्रकट किया है–

"नंग–धडंग बच्चे दौड़ते हुए खेल रहे हैं जहाँ
वहीं सघन झाड़ियाँ थीं एक दिन
औरतें जिस कुए से उलीच रही हैं पानी
वहीं कहीं होगी क्या नागझिरी
कमर तक घास में से उठते सुनहरे सर्प–युग्म–मिथुन को
देखा होगा जिनने उनमें से कोई नहीं बचा है
सावन–भादों की दुपहर में हवा और पानी को परस्पर मथते देख
कैसे काँटे उमचते होंगे उनकी देहों पर
अब कौन बताए
अभी तो पत्थर के साँप को
गेंदे के फूलों से ढकती गुमसुम लगती हैं बच्चियाँ।"[21]

देवताले को बच्चों के भविष्य में जहर घोलना तथा उन्हें काँटेदार भूलभुलैया में छोड़कर जाना अनुचित और दर्दभरा लगता है–µ

"किस तरह होती जा रही है दुनिया
कैसे छोड़कर जाऊंगा मैं
बच्चों तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को
इस काँटेदार भूलभुलैया में
किस तरह और क्या सोचते हुए
मरूँगा मैं कितनी मुश्किल से
साँस लेने के लिए भी जगह होगी या नहीं
खिड़की से क्या पता
कब दिखना बंद हो जाए हरी पत्तियों के गुच्छे
हरी पत्तियों के गुच्छे नहीं होंगे

तो मैं कैसे मरूँगा
मैं घर में पैदा हुआ
घर पेड़ का सगा था
गाँव में बड़ा हुआ
गाँव खेत–मैदान का सगा था
पर अब किस तरह रंग बदल रही है दुनिया
मैं कारखाने में फँसी आवाजों के बिस्तर पर
नहीं मरूँगा।"[22]

हरी–भरी प्रकृति मानव–जीवन को सुखकर और शांत बनाती है। मानव का उद्विग्न मन प्रकृति के सुहावने स्पर्श से हर्ष से खिल उठता है। मानव प्रकृति के साथ कितना भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करे, उदार और सदया प्रकृति अपना सर्वस्व उसी मानव के लिए न्योछावर करती है। फल–फूल–छाँह देने के लिए सदैव तत्पर रहने वाले पेड़ प्रतिदान की अपेक्षा बिल्कुल नहीं रखते। पेड़ों की इसी उदारता का अंकन करते हुए कवि ने बताया है कि–µ

"पेड़ों का हरापन मनुष्यों की
भूरी–भुरसट दुनिया में
निचाटपन के विरुद्ध
पानी की हलचल है
पानी के हाथों की तरह
पेड़ों की टहनियाँ
लगातार हिलती हैं
और पत्तियों की स्निग्ध भाषा
आदमी की आँखों को
बंजर होने से रोकती है
पर आदमी पेड़ों की पसलियों
तक से वसूल करता है
और काठ की दो–तीन चिडियाँ
सफेद दीवार पर ठोंक देता है
फीर भी आदमी बौना नहीं लगे
इसलिए पेड़ अपनी टहनियों को झुका देते हैं
और बच्चों को फल
स्त्रियों को फूल
और चाहने पर प्रेम के लिए
छाँह के अलावा
थोड़ी–सी आड़ भी देते हैं।"[23]

मानव का जन्म भी प्राकृतिक देन है। मानव के निर्माण से लेकर अब तक धरती मानव को अनवरत रूप से सब कुछ दे रही है। मानव–कल्याण के लिए अनवरत कार्य करने वाली धरती का गुण–गौरव करते हुए कवि ने लिखा है–µ

"पृथ्वी ने कितने चक्कर काटे
घूमी लगातार ऋतुओं के गवाक्ष खोले
रंगों और गंधों के फौव्वारें छोड़े
अनगिनत बार धरती ने सब कुछ दिया
पारदर्शी–अपारदर्शीµ
ठोस–तरल और उड़ती हुई चीजें
चमकती हुई और स्याह मटमैली
सब कुछ दिया अपनी अस्थियों से
आंतों से
रक्त और दूध और त्वचा से
अपनी धड़कन से
सूरज और चंद्रमा को बदला
अपनी दो आँखों में।"[24]

इस प्रकार स्पष्ट है कि बचपन से ही गाँव की सम्पन्न प्रकृति की गोद में पले–बढ़े देवताले जी के मन में प्रकृति के प्रति बेहद आसक्ति है। प्रकृति मानव को सौंदर्य, आनंद तथा शुद्ध हवा ही नहीं देती, तो घुटन से मुक्ति भी देती है। इस स्वानुभूत तथ्य को उन्होंने प्रस्तुत किया है।

5.0 बाजारवाद का प्रभाव

पिछले कुछ दशकों से प्रगत देशों की बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ वैश्वीकरण के नाम पर दुनियाभर में अपने पैर फैला चुकी हैं। अपना माल बाजार में बेचने के लिए तथा अधिकाधिक मुनाफा कमाने के लिए कम्पनियाँ आकर्षक विज्ञापनों का सहारा लेकर उपभोक्ता संस्कृति का निर्माण कर चुकी हैं। परिणामस्वरूप विश्व का हर व्यक्ति उसके चंगुल में फँस चुका है। आज विश्व के पूरे मानव समुदाय के मध्य जो अघोषित युद्ध छिड़ा हुआ है उसके दो प्रमुख केंद्र हैं एक परिवार और दूसरा बाजार। परिवार की प्रकृति परस्पर बाँटकर खाने की है और बाजार की प्रकृति दूसरे से किसी प्रकार से छीनकर खाने की है। परिवार और बाजार का यह यादवी संघर्ष केवल आर्थिक ही नहीं अपितु सामाजिक और सांस्कृतिक भी है।
त्रिभुवन शुक्ल के इस विवेचन से स्पष्ट है कि उपभोक्ता संस्कृति का प्रभाव दुनियाभर के मानव समाज पर स्पष्ट दिखाई देता है। भारतीय समाज भी इस संस्कृति के प्रभाव से अछूता नहीं है। यहाँ भी उपभोक्तावाद ने मानव को वस्तु में बदला है। नारी सौंदर्य बाजार में बेचा जा रहा है। पूँजी बाजार में उसके जिस्म को उपभोग की वस्तु समझकर विज्ञापित किया जा रहा है। मानव को वस्तु में बदलकर उसके अंदर अनेक सारी वासनाएँ ठूँस–ठूँसकर भरने वाले बाजारवाद पर तथा उसकी मुनाफा नीति के प्रभाव में आकर चरित्राहीन बनते लालची लोगों पर व्यंग्य करते हुए देवताले लिखते हैं–µ

“इस पवित्रा भूमि पर अवरित हो चुकी है
भूखी और प्यासी इतनी वासनाएँ विश्व–बाजार की
चीजों से पटी लदकद दुकानें
और मौत के मिलावटी धंधे
किसके अनुशासन में हैं जेबकतरे और
वे भी जो आत्मा की छाया तक में करते छेद
नेपथ्रू में बरबादियाँ तबाहियाँ थोक में
मंच पर बैठे ईश्वर की गोद में कायर ओजस्वी लालची बूढे नेता
और दौड़ता–भागता हुआ शहर सामने
दिग्विजय का अर्थ बिन समझे
मंत्रोच्चार में शामिल होने के लिए गिड़गिड़ाता।”[25]

बाजारवाद तथा उपभोक्ता संस्कृति के मायाजाल में फँसकर झूठ, बेईमानी और भ्रष्टाचार का सहारा लेकर एक गृहस्थ अपने परिवार के लिए अपार धन कमाता है। सभी के लिए सब सुविधाएँ देता रहता है, लेकिन हर दिन नई फरमाइश होती है, तो वह अपने परिवार से डरने लगता है तथा अपने आप को परिवार में ही अजनबी महसूस करने लगता है। ‘घबड़ाया–डरा आदमी’[26] कविता में कवि ने परिवार पर हो रहे बाजार के इसी हमले का चित्र उपस्थित किया है–µ

“मैं घबरा गया हूँ डर कुत्तों की तरह मेरे पीछे भोंकता ही रहता है
पैंतालीस साल की जिन्दगी बीस साल की नौकरी
पर लगता है झूठ और बेईमानी को खोदते बूढ़ा हो गया हूँ
प्रेम के पहले मुझे बीवी से डर लगता है
वह पड़ोसी के यहाँ आई किसी नई चीज से शुरू होती है
मुझे लगता है मैं प्रेम नहीं कर रहा
फरमाइशों के ताशमहल में भटक रहा हूँ
मुझे अपने बेटे के खत से डर लगता है
जो हजार से कम कभी चाहता ही नहीं
मुझे लगता है मैं पति नहीं पिता नहीं
एक जानवर हूँ नोट हड़पने वाला
एक मशीन सुविधाएँ जुटाने वाली
मुझे अपने उस घर से डर लगता है
जिसे मैंने अपनी आँखों के सामने बनवाया
दीवारों से, छत से, कीमती मोजेक वाले फर्श से डर लगता है
हर जगह स्याह दस्तकें फरेब की भूलभुलैया
धोखे से कमाई हर चीज की काँटेदार झाड़ियों में फँसा मैं
अपने ही खुश लोगों के बीच
अजनबी छाया–सा मँडराता रहता हूँ।”[27]

बाजार का प्रभाव इतना जबरदस्त है कि उसने हर चीज बिकाऊ बनाई है तथा हर चीज के लिए खरीददार निर्माण किए हैं। मानव की आत्मा, शरीर का हर अवयव या अंग, सौंदर्य, जिस्म तथा बुद्धि का बाजार तो आज तेज है ही, लेकिन बाजार के प्रभाव से स्वाभिमान तथा क्रांति के बीज भी बिकाऊ बने हैं। देवताले इस बात से बेहद दुखी हैं। वे लेब्रेडोर को सम्बोधित कर लिखते हैं—µ

"यह वक्त बाजार है लेब्रेडोर
तुम्हारी परछाई तक पर
नजर है खरीददार की
मैं तुमसे सच बताऊँ
मैंने खुद बिकते देखी है
अपनी आवाज की परछाई
उस वक्त मैं काँप रहा था
डार्क रूप में अपना ही निगेटिव देख
लेब्रेडोर, दिग्–दिगंत नाप आओ
अपनी सावधान करती आवाज के साथ
गश्त लगाते
घ्राण शक्ति की खुपसनी से
उपस लाओ तहखानों तक के राज
फिर बताओ और गिनाओ नाम
जो बिकाऊ नहीं है उन चीजों के
मैं कह जो रहा हूँ
यह वक्त ही बाजार है लेब्रेडोर
तुम्हारे बूते से ही मैं खड़ा हूँ
इस मौकापरस्त बनाने वाली
साजिश को धकियाता
आज जब तय नहीं है किसी को भी
सुनिश्चित कोई भूमिका
कितना मुश्किल है बताना
कि यह.....
यह है वह पत्थर, आवाज, मिट्टी
शब्द जो बिकाऊ नहीं हैं
बगीचे भर फूलों की गंध
इंच भर शीशियों में
और भूखंड भर क्रांति के बीज
व्हिस्की की बोतलों में बिक रहे हैं।"[28]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि देवताले ने बाजारवाद तथा उपभोक्तावाद के प्रभाव से गायब होते जा रहे पारिवारिक मूल्यों, नैतिक मूल्यों तथा हर चीज के बिकाऊ बनने पर चिंता व्यक्त की है। आज मनुष्य इस उपभोक्तावादी समाज में फँसकर अपना मनुष्य होने का अर्थ खोता जा रहा है। प्रसन्नता इस बात की है कि आज हमारा रचनाकार इस ओर सजग है। यह हमारे साहित्यिक भविष्य के लिए एक बहुत बड़ा शुभ संकेत है।[29]

6.0 निष्कर्ष

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि देवताले के काव्य में प्रदूषण, आतंकवाद, पर्यावरण का विनाश, बाजार के प्रभाव से 'उपभोक्तावाद का शिकार होता परिवार जैसी समसामयिक समस्याओं का चित्राण हुआ है, जो न केवल भारतीय हैं, बल्कि वैश्विक हैं। प्रदूषण की समस्या औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की देन है। हवा, पानी, भोजन तथा ध्वनि प्रदूषण आज अपनी सीमा लाँघ चुका है। परिणामस्वरूप मानव अनेक सारी बीमारियों का शिकार हो रहा है। औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं विकास के नाम पर हो रही पर्यावरण की हानि भी प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है। पर्यावरण के विनाश से तापमान का बढ़ना और अकाल जैसी समस्याएँ भी विकराल रूप धारण कर रही हैं। पिछले कुछ वर्षों से विश्वस्तर पर इसकी चर्चा हो रही है। पर्यावरण की रक्षा तथा प्रदूषण से मुक्ति के लिए अनेक उपाय ढूँढे जा रहे हैं तथा कानून भी बनाए गए हैं। लेकिन आज भी ये समस्याएँ उग्र ही बनती जा रही हैं। अतः जरूरत है विश्वस्तर पर हर मानव को इन समस्याओं के प्रति सजग करने की। अन्यथा मानव का विनाश अटल है।

वैश्विकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विश्वभर में फैली हैं और वे अपना माल बेचने के लिए विज्ञापनों के द्वारा एवं प्रसार माध्यमों के जरिए हर व्यक्ति तक पहुँच रही हैं। परिणामतः उपभोक्ता संस्कृति विश्वभर में पनप चुकी है, जिसकी चपेट में आकर परिवारवाद की गरिमा शिथिल पड़ चुकी है।

7.0 सन्दर्भ

1. सम्पा. श्री नवल जी, नालंदा विशाल शब्द सागर, पृष्ठ 1286
2. वही, पृष्ठ 1286
3. चन्द्रकांत देवताले, भूखंड तप रहा है, पृष्ठ 18
4. वही, पृष्ठ 46
5. चन्द्रकांत देवताले, आग हर चीज में बताई गई थी, पृष्ठ 100
6. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 121
7. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 138
8. सम्पा. श्री नवल जी, नालंदा विशाल शब्द सागर, पृष्ठ 123
9. वही, पृष्ठ 572
10. चन्द्रकांत देवताले, पत्थर की बैंच, पृष्ठ 52–53
11. चन्द्रकांत देवताले, पत्थर की बैंच, पृष्ठ 60
12. चन्द्रकांत देवताले, पत्थर की बैंच, पृष्ठ 98
13. चन्द्रकांत देवताले, हड्डियों में छिपा ज्वर, पृष्ठ 26–27
14. चन्द्रकांत देवताले, भूखंड तप रहा है, पृष्ठ 38
15. चन्द्रकांत देवताले, भूखंड तप रहा है, पृष्ठ 39
16. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 18
17. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 74–75
18. चन्द्रकांत देवताले, इतनी पत्थर रोशनी, पृष्ठ 10
19. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 57
20. चन्द्रकांत देवताले, दीवारों पर खून से, पृष्ठ 53
21. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 123
22. करूणाशंकर उपाध्याय, पाश्चात्य काव्य चिंतन, पृष्ठ 229–30
23. चन्द्रकांत देवताले, पत्थर की बैंच, पृष्ठ 69
24. चन्द्रकांत देवताले, आग हर चीज में बताई गई थी, पृष्ठ 15
25. चन्द्रकांत देवताले, लकड़बग्घा हँस रहा है, पृष्ठ 74–75
26. चन्द्रकांत देवताले, भूखंड तप रहा है, पृष्ठ 37
27. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 150
28. चन्द्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृष्ठ 41–42
29. चन्द्रकांत देवताले, पत्थर की बैंच, पृष्ठ 105–106